RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 | अंक - 4 | सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वेदांग शिक्षा ग्रन्थों में नारदीय शिक्षा की विवेचना

नरेन्द्र सिंह नाथावत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

नारदीय शिक्षा सहित समस्त वेदाङ्ग शिक्षा ग्रन्थों के अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि वेदाङ्ग शास्त्र वेदों के सहायक मात्र नहीं, अपितु वेदार्थ के यथार्थ बोध और वैदिक धर्मकर्मों के शुद्ध एवं विधिसम्मत अनुष्ठान के लिए अनिवार्य आधार हैं। कुमरिलभट्ट, विष्णुमित्र तथा पाणिनीय परम्परा के आचार्यों के कथनों से यह सिद्ध होता है कि वेदाङ्गों की उत्पत्ति वेदों से ही मानी गई है और इन्हें वेद की ही भाँति पवित्र एवं पुरुषार्थ-साधक स्वीकार किया गया है।

वेदमन्त्रों का अर्थ अत्यन्त सूक्ष्म एवं गूढ़ होने के कारण केवल कण्ठस्थ पाठ से यज्ञादि कर्मों का सम्यक् अनुष्ठान संभव नहीं है। इसी कारण वेदार्थ को तत्त्वत: जानने वाले महर्षियों ने शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्दस् और ज्योतिष—इन षट्शास्त्रों का प्रवर्तन किया। यास्क के निरुक्तानुसार प्रारम्भिक काल में महर्षि स्वयं वेदार्थ का साक्षात्कार कर शिष्यों को मन्त्रों की शिक्षा देते थे; कालान्तर में उसी परम्परा को व्यवस्थित एवं सुरक्षित रखने हेतु वेदाङ्ग शास्त्रों की रचना हुई। मुण्डकोपनिषद्, आपस्तम्बधर्मसूत्र तथा पाणिनीय शिक्षा में इन वेदाङ्गों को वेदपुरुष के विभिन्न अङ्गों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जिससे उनकी अनिवार्यता और अंगीभाव सिद्ध होता है।

वेदाङ्ग के रूप में 'शिक्षा' आधुनिक शिक्षाशास्त्र से सर्वथा भिन्न एक पारिभाषिक शास्त्र है। इसका मुख्य उद्देश्य वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए वर्ण, स्वर, मात्रा, उच्चारण-स्थान तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के नियमों का वैज्ञानिक और अनुशासित ज्ञान प्रदान करना है। इस दृष्टि से शिक्षा वेद के 'प्राण' के समान है, क्योंकि इसके अभाव में न तो वेदमन्त्रों का शुद्ध पाठ संभव है और न ही वैदिक धर्मकर्मों का पूर्ण फल प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार नारदीय शिक्षा वैदिक परम्परा में ध्वनि, स्वर और वाणी की पवित्रता को सुरक्षित रखने वाली एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

वेदाङ्ग शिक्षा (शास्त्र) के स्वरूप एवं तद्विवेच्य विषयों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा का स्थान वेदाङ्गों में प्रथम इसलिए है, क्योंकि वेद स्वयं नादात्मक वर्णराशि हैं और उनके शुद्ध, निर्दोष तथा अर्थबोधक उच्चारण का आधार शिक्षा शास्त्र ही है। नाद और वर्ण के विशुद्ध उच्चारण के बिना न तो वेदमन्त्रों का यथार्थ पाठ सम्भव है और न ही यज्ञादि वैदिक कर्मों का फलप्रद अनुष्ठान। इसी कारण पतञ्जलि ने उपपत्ति के साथ शिक्षा की प्रथमाङ्गता सिद्ध की है तथा नागोजिभट्ट ने भी यह स्पष्ट किया है कि शिक्षाग्रन्थों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किए बिना व्याकरण जैसे गम्भीर शास्त्रों का अध्ययन सम्भव नहीं है।

आचार्यों के मतानुसार वेदाङ्गों का समन्वित प्रयोजन यह है कि शिक्षा और छन्दस् वेद के शुद्ध

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

पाठ को सुरक्षित रखें, व्याकरण और निरुक्त वेदार्थ के बोध में सहायक हों, तथा कल्प और ज्योतिष यज्ञविधि एवं शुभ देश-काल के निर्धारण में मार्गदर्शन करें। इस प्रकार प्रत्येक वेदाङ्ग का स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर पूरक स्वरूप सिद्ध होता है।

तैत्तरीयोपनिषद् में शिक्षा एवं उसके अध्येय विषयों का प्रथम निर्देश प्राप्त होता है, जिसे आधार बनाकर परवर्ती आचार्यों—विशेषत: शङ्कराचार्य—ने शिक्षा की सुस्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत की। शङ्कराचार्य के अनुसार वर्णादि के विशुद्ध उच्चारण की विधि का उपदेश देने वाला शास्त्र ही शिक्षा है। इसी क्रम में शिक्षा शास्त्र के अन्तर्गत वर्णों का उच्चारण, स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित), मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत), उच्चारण-स्थान, करण, प्रयत्न, अनुप्रदान, साम, संहिता तथा वर्णविकार, लोप और आगम आदि नियमों का सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

परवर्ती आचार्यों—राजशेखर, आपस्तम्ब परम्परा, पाणिनीय शिक्षा तथा अन्य व्याख्याकारों ने उपनिषदुक्त लक्षण का परिष्कार कर शिक्षा के विषयक्षेत्र को और अधिक व्यापक एवं सुगम बनाया। इन सभी परिभाषाओं का सार यह है कि शिक्षा वह शास्त्र है जो स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान आदि के आधार पर वर्णों के शुद्ध पाठ एवं उच्चारण की विधि का शिक्षण करता है। निष्कर्षत: वेद एवं वेदार्थ की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में शिक्षा शास्त्र की भूमिका मूलाधारभूत एवं अनिवार्य सिद्ध होती है।

शिक्षा साहित्य :

शिक्षा साहित्य के विकासक्रम पर विचार करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वेदशाखाओं का विभाजन केवल पाठ-परम्परा का भेद नहीं है, अपितु मुख्यत: वर्णोच्चारण, स्वर, मात्रा और ध्वन्यात्मक सूक्ष्मताओं के भेद पर आधारित है। महर्षि वेदव्यास द्वारा वेदों के चतुर्विभाजन के पश्चात् जब वेदों की शाखाएँ क्रमश: विकसित होती गईं, तब प्रत्येक शाखा की विशिष्ट उच्चारण-परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए पृथक्-पृथक् शिक्षा ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी। इसी कारण वेदशाखाओं की संख्या के अनुरूप शिक्षा ग्रन्थों की भी रचना होती चली गई।

यद्यपि कालक्रम में अनेक वेदशाखाएँ और उनके शिक्षाग्रन्थ लुप्त हो गए, तथापि जो शिक्षा ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं, वे वैदिक ध्वनि-परम्परा की प्रामाणिकता और निरन्तरता के सशक्त प्रमाण हैं। वर्तमान में सौ से अधिक शिक्षाग्रन्थों की उपलब्धता यह सिद्ध करती है कि शिक्षा शास्त्र वैदिक अध्ययन-परम्परा में कितना व्यापक और अनिवार्य रहा है। 'शिक्षासंग्रह' जैसे ग्रन्थों में इनका संकलन यह दर्शाता है कि आधुनिक काल में भी इन ग्रन्थों के संरक्षण और अध्ययन को विशेष महत्व दिया गया है।

इन शिक्षा ग्रन्थों की उपयोगिता केवल वेदशाखाओं के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् तथा अन्य शास्त्रों के सम्यक् अध्ययन में भी इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक शिक्षा ग्रन्थ अपने-अपने शाखागत वैशिष्ट्य के माध्यम से वेदमन्त्रों के शुद्ध पाठ और अर्थबोध को सुरक्षित करता है। इस प्रकार शिक्षा साहित्य वैदिक परम्परा की ध्वन्यात्मक शुद्धता, शाखागत विविधता और शास्त्रीय अनुशासन—तीनों का सेतु बनकर कार्य करता है।

नारदीय शिक्षा :

नारदीय शिक्षा के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि सामवेद की परम्परा मूलत:

ऋग्वैदिक मन्त्रों के गीतात्मक प्रयोग से विकसित हुई है और वेदों के अनादित्व के साथ ही गान-परम्परा भी अनादि मानी जाती है। जैमिनीय धर्मसूत्र तथा ऋग्वेद के अनेक मन्त्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि यज्ञादि अनुष्ठानों में सामगान का विशिष्ट स्थान रहा है। अत: सामवेद न केवल मन्त्रसंग्रह है, बल्कि स्वर, लय और गान की सुव्यवस्थित वैदिक परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ भी है।

सामवेद के गान में प्रयुक्त स्वरों तथा वर्णोच्चारण सम्बन्धी नियमों का विस्तृत विवेचन अनेक सामवेदीय शिक्षाग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिनमें नारदप्रणीत *नारदीय शिक्षा* का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें सामगान के वैदिक स्वर-तत्त्वों के साथ-साथ भारतीय समाज में स्वतन्त्र रूप से विकसित संगीत विद्या के स्वरादि तत्त्वों का भी समन्वित विवेचन किया गया है। इसी कारण नारदीय शिक्षा को सामवेदीय गान और लौकिक संगीत—दोनों की समझ के लिए एक सेतु-ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय संगीत विद्या के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में प्रचलित मतों को समेटते हुए नारदीय शिक्षा वैदिक एवं लौकिक परम्पराओं का समन्वय प्रस्तुत करती है। नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार ब्रह्मा द्वारा वेदों से तत्त्व ग्रहण कर नाट्यविद्या की स्थापना और सामवेद से गीतविद्या के ग्रहण का उल्लेख इस तथ्य को पुष्ट करता है कि संगीत की जड़ें वैदिक सामगान में निहित हैं। मार्ग और देशी गीत परम्पराओं का उद्भव भी सामवेद से माना गया है। नारदीय शिक्षा में सामवेद में प्रयुक्त क्रुष्टादि सप्त स्वरों तथा लौकिक संगीत में प्रतिष्ठित षड्जादि स्वरों का यथास्थान प्रतिपादन कर इस वैदिक-लौकिक निरन्तरता को सुस्पष्ट किया गया है।

ग्रन्थीय संरचना की दृष्टि से नारदीय शिक्षा दो प्रपाठकों में विभक्त है, जिनमें प्रत्येक में आठ-आठ कण्डिकाएँ हैं। सोलह कण्डिकाओं में निहित 227 कारिकाओं में विषयवस्तु का क्रमबद्ध विभाजन एवं शीर्षकाभाव होने के कारण यह ग्रन्थ सामान्य पाठक के लिए कठिन प्रतीत होता है। टीकाकारों और समीक्षकों ने इसकी विषयगत महत्ता को स्वीकार करते हुए भी इसकी प्रस्तुति-शैली की इस न्यूनता की ओर संकेत किया है। परिणामत: गुरुपरम्परा से सामवेद के अध्येता ही इस ग्रन्थ के गूढ़ आशयों को भलीभाँति समझ पाने में समर्थ होते हैं।

प्रथम प्रपाठक :

नारदीय शिक्षा के प्रथम प्रपाठक का समग्र विवेचन यह स्पष्ट करता है कि इस भाग का मुख्य उद्देश्य वैदिक मन्त्रों, विशेषत: सामवेद के गान, में स्वर एवं वर्ण-शुद्धता के अनिवार्य महत्व को स्थापित करना है। प्रथम कण्डिका में ही ग्रन्थकार यह सिद्ध कर देते हैं कि यज्ञों में प्रयुक्त मन्त्र यदि स्वर अथवा वर्णदोष से युक्त हों, तो वे अभीष्ट फल देने के स्थान पर अनिष्टकारी हो जाते हैं। 'इन्द्रशत्रु' प्रसङ्ग के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि मात्र स्वर-भेद से मन्त्रार्थ पूर्णत: विपरीत हो सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वेदपाठ और यज्ञकर्म की सफलता का मूलाधार शिक्षा-शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट शुद्ध मन्त्रोच्चारण ही है।

इसी कण्डिका में स्वर-उच्चारण के स्थान (उरस्, कण्ठ, शिरस्), उनके भेद, सामवेद के क्रुष्टादि सप्त स्वर तथा विभिन्न वेदशाखाओं में उनके प्रयोग-नियमों का निरूपण कर ग्रन्थकार सार्ववैदिक स्वर-

व्यवस्था की आधारशिला रखते हैं। द्वितीय कण्डिका में यह स्वर-व्यवस्था वैदिक सीमा से आगे बढ़कर लौकिक संगीत के क्षेत्र में प्रवेश करती है, जहाँ षड्जादि सप्त स्वर, ग्राम, मूर्च्छना और तान के माध्यम से एक सुव्यवस्थित स्वरमण्डल की स्थापना की गई है। देव, ऋषि, पितर, गन्धर्व, यक्ष आदि से स्वरों का सम्बन्ध जोड़कर इनके आधिदैविक एवं आधिभौतिक आयामों को भी स्पष्ट किया गया है।

तृतीय कण्डिका में गान के दश गुणों का प्रतिपादन कर यह बताया गया है कि वैदिक अथवा लौकिक—किसी भी प्रकार का गान तभी उत्कृष्ट माना जाएगा जब उसमें माधुर्य, समता, स्पष्टता और सौष्ठव जैसे गुण विद्यमान हों। साथ ही चौदह गान-दोषों का निर्देश यह दर्शाता है कि नारदीय शिक्षा केवल आदर्श नहीं, बल्कि व्यावहारिक संगीत-अनुशासन भी प्रस्तुत करती है। चतुर्थ एवं पंचम कण्डिकाओं में स्वरों का वर्ण, वर्णाश्रम, राग, पशु-पक्षियों तथा देव-गन्धर्वों से सम्बन्ध स्थापित कर संगीत को सम्पूर्ण सृष्टि-व्यवस्था से जोड़ा गया है, जिससे यह विद्या केवल कलात्मक न रहकर आध्यात्मिक और ब्रह्माण्डीय बन जाती है।

षष्ठ से अष्टम कण्डिकाओं में सामवेद के अध्यापन, गान-विधि, गात्रवीणा, अंगुलि-प्रयोग, श्रुति-भेद, स्वर-परिवर्तन के नियम तथा आर्चिक मन्त्रों में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों के सूक्ष्म प्रयोग का विवेचन किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रथम प्रपाठक न केवल सिद्धान्तात्मक स्वर-शास्त्र प्रस्तुत करता है, बल्कि सामगान की व्यावहारिक प्रशिक्षण-पद्धति भी निर्धारित करता है।

द्वितीय प्रपाठक :

नारदीय शिक्षा के द्वितीय प्रपाठक का समग्र अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह भाग मूलत: वेदपाठ में स्वर और व्यञ्जनों के विशुद्ध, अनुशासित एवं त्रुटिरहित उच्चारण को सुनिश्चित करने के लिए रचा गया है। प्रथम प्रपाठक जहाँ स्वर-शास्त्र, सामगान और संगीतात्मक तत्त्वों की स्थापना करता है, वहीं द्वितीय प्रपाठक उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक वेदपाठ में लागू करने के सूक्ष्म नियम प्रस्तुत करता है। इस प्रपाठक में स्वरित, उदात्त और अनुदात्त स्वरों के भेद, कम्पत्व, मात्रा, गुरुत्व-लघुत्व तथा संहिता-पदपाठ में उनके परिवर्तन के नियमों का अत्यन्त गम्भीर और तकनीकी विवेचन किया गया है, जो स्पष्टत: सामवेदज्ञ आचार्यों के लिए अभिप्रेत है।

प्रथम एवं द्वितीय कण्डिकाओं में स्वरित स्वर के अनेक भेदों, उनके कम्पन, ह्रस्व-दीर्घ भेद तथा अनुदात्त और उदात्त स्वरों के विशेष स्वरूपों का निरूपण यह सिद्ध करता है कि वैदिक पाठ केवल ध्वनि का साधारण उच्चारण नहीं, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म ध्वन्यात्मक अनुशासन है। तृतीय एवं चतुर्थ कण्डिकाओं में संहिता-पाठ, पदपाठ और विवृत्ति के नियमों का प्रतिपादन कर यह बताया गया है कि कहाँ सन्धि अपेक्षित है और कहाँ उसका निषेध, जिससे मन्त्र का स्वरूप और अर्थ अक्षुण्ण रहता है। विवृत्तियों के प्रकारों तथा मात्राभेद के उल्लेख से सामवेद और अन्य वेदों की पाठ-परम्पराओं का सूक्ष्म अन्तर भी स्पष्ट होता है।

पञ्चम और षष्ठ कण्डिकाओं में पदजातियों, विसर्ग-गति, स्वर-व्यञ्जन सम्बन्ध, सन्धिजन्य परिवर्तनों तथा छन्दोमान के अनुसार वर्ण-स्वर के नियमों का विवेचन यह दर्शाता है कि शिक्षा शास्त्र का सम्बन्ध केवल ध्वनि तक सीमित न होकर छन्दस् और व्याकरण से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। सप्तम कण्डिका में छन्दों, पदस्वरों के विविध भेदों तथा सामपाठ के अध्यापन-क्रम का वर्णन कर ग्रन्थकार यह संकेत देता है कि सामवेद का अध्ययन बिना दीर्घ अभ्यास, गुरु-शिष्य परम्परा और रहस्यमय विधियों के सम्भव नहीं है।

अष्टम एवं अन्तिम कण्डिका में विद्यार्थियों और आचार्यों के आचार-विधान, दिनचर्या, आहार-विहार और अध्ययन-पद्धति का वर्णन शिक्षा शास्त्र को केवल तकनीकी ग्रन्थ न रहने देकर एक समग्र शैक्षिक एवं सांस्कृतिक अनुशासन का रूप देता है। गुरु-सन्निधि में अध्ययन, निरन्तर अभ्यास, शुद्ध उच्चारण और विनय—इन सबको विद्या-प्राप्ति का अनिवार्य साधन माना गया है। अन्तिम कथन— 'सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते' इस सम्पूर्ण प्रपाठक का सार प्रस्तुत करता है कि शुद्ध वर्णोच्चारण केवल लौकिक कौशल नहीं, अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष का भी साधन है।

निष्कर्षत: नारदीय शिक्षा का समस्त विवेचन यह सिद्ध करता है कि यह ग्रन्थ सामवेद के मन्त्रों में प्रयुक्त स्वरों और व्यञ्जनों के शुद्ध उच्चारण हेतु रचित है। इसमें स्वरित, उदात्त, अनुदात्त, विवृत्ति, सन्धि, छन्द तथा सामगान के नियमों का प्रतिपादन कर वेदपाठ की शुद्धता को अनिवार्य बताया गया है। साथ ही लौकिक संगीत के तत्त्वों का उल्लेख कर वैदिक परम्परा और भारतीय संगीत के गहरे सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ सम्यक् वर्णप्रयोग द्वारा मन्त्रसिद्धि को ही अपना परम उद्देश्य मानता है।

ꣿꣿꣿ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *नारदीय शिक्षा, सम्पादक: पं. सत्यव्रत सामश्रमी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी, 1965*
2. *नारदीय शिक्षा (सव्याख्या), सम्पादक: डॉ. रामनाथ शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1982*
3. *शिक्षासंग्रह, सम्पादक: डॉ. मंडन मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1977*
4. *याज्ञवल्क्य शिक्षा, सम्पादक: पं. सत्यव्रत सामश्रमी, एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, 1908*
5. *पाणिनीय शिक्षा, सम्पादक: पं. हरदत्त शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999*
6. *वैदिक शिक्षा और ध्वनिविज्ञान, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 2004*
7. *सामवेद संहिता (सायणभाष्य सहित), भाष्यकार: सायणाचार्य, सम्पादक: पं. दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी, 1983*
8. *सामवेद का सांगीतिक अध्ययन, डॉ. प्रेमलता शर्मा, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, 1978*
9. *भारतीय संगीत का इतिहास, आचार्य ब्रहस्पति, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1996*
10. *वैदिक छन्द और स्वर व्यवस्था, डॉ. रामगोपाल त्रिपाठी, संस्कृत भारती प्रकाशन, लखनऊ, 2010*
11. *ध्वनि, स्वर और वेदपाठ, डॉ. सत्यकाम वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008*
12. *भारतीय शिक्षा परम्परा में शिक्षा ग्रन्थ, डॉ. शिवकुमार मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015*